International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 02(IV), April - June, 2021, pp.153-156

हिन्दी कविता और स्त्री विमर्श

विजेन्द्र प्रसाद मीणा*

सार

स्त्री ईश्वर की अनुपम कृति है। इससे भी अधिक अनुपम है उसकी कार्यक्षमता। स्त्री ने स्वंय को समय के अनुसार परिवर्तित किया है स्त्री ने घरेलू कार्यो के साथ साथ पढ लिख कर घर से बाहर निकलकर भी जीवन यापन के लिए कार्य करना प्रांरभ किया है। स्त्री–विमर्श की क्रांति एक दिन में ही नही आई इस क्रांति की ज्वाला को प्रज्जवलित करने के लिए एक कदम बढाने में बरसों लंबा समय लगा है। स्त्री विमर्श के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम समकालीनता की रेखा अवश्य खींच लें। इस एक काल विशेष की रचनाओं को समझने और उसके विश्लेषण में आसानी होगी। वर्तमान कविताओं में अब नये प्रकार के और अनेक प्रकार के स्वर सुनाई देने लगे हैं। यह वर्तमान है दौर स्त्री विमर्श के लिहाज से पहले ही अधिक समावेशी और लोकतात्रिक हुआ है। लैंगिक विभेद और देह मुक्ति अवधारक इस विमर्श को एक नया आमाम देती है। स्त्री अनेक प्रकार से संघर्ष करती है अपने लिए बंद दरवाज़ों को खोलती है वह समाजिक संबन्धों को सुलझाने का प्रयास तो करती ही हैं अतिवादी विचारधाराओं में पुरूषवाद रूपी समाज को समाप्त करने की ललक इतने आगे निकल जाती है लगता है वह पुरूष को ही समाप्त कर देगी अच्छा है पुरूष न रहे पर इंसान बचा रहे। प्रस्तुत पेपर में वर्तमान समकालीन हिन्दी कविताओं में स्त्री विमर्श के बारे मे बताया गया है।

कुंजीशब्दः *कविता, स्त्री, साहित्य, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, हिन्दी।*

प्रस्तावना

संकुचित विचारधारा के लोग स्त्री–विमर्श को पुरूषों के विरूद्ध आंदोलन के रूप में देखते है। स्त्री–विमर्श का अर्थ पुरूषों का विरोध करना नही है। स्त्री–विमर्श परिवार तथा समाज को तोडने का काम नही करता। स्त्री–विमर्श के द्वारा स्त्री को समाज में सम्मान दिलाना ही एकमात्र उद्देश्य रहा है। स्त्री–विमर्श की विचारधारा को असमानता के चश्में से देखना निरर्थक है। स्त्री समाज का मुख्य हिस्सा है उसको मुक्ति दुखों से मुक्ति दिलाना तथा मनुष्य के रूप में उससे व्यवहार करना ही मानवीयता है।

भारतीय साहित्य में स्त्री चिंतन की परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है। हिन्दी साहित्य नारी चिंतन की एक लम्बी परम्परा है। आज़ादी के समय से लेकर आज तक स्त्री विमर्श की एक सुदीर्घ परम्परा है। स्त्री विमर्श में अनेक प्रकार साहित्यिक विधाओं के माध्यम से चिंतन को रेखाकित किया गया है। कहानी, उपन्यास, आत्मकथा और कविता, इन्ही साहित्य की विधाओं में सर्वाधिक व महत्वपूर्ण विमर्शकारी स्वरूप सामने आता है। इन सभी विधाओं में स्त्री विमर्श अपने अपने तरीक़े से सामने आता है। सबसे मर्मस्पर्शी तरीक` से स्त्री चिंतन का स्वरूप समकालीन कविताओं के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

साहित्य में चिंतन जब से आरम्भ होता है, उसका रेखाकन हम कोई समय निश्चित कर के नहीं कर कर सकते। हाँ इतना अवश्य है कि एक समय सीमा अवश्य बनाते हैं वह भी मोटे तौर पर। समकालीन रचनाओं में स्त्री विमर्श के स्वरूप को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम समकालीनता की रेखा अवश्य खींच लें। इस एक काल विशेष की रचनाओं को समझने और उसके विश्लेषण में आसानी होगी। प्रश्न यह है कि हम

---

[6] सह आचार्य–हिन्दी, एस.पी.एन.के.एस. राजकीय पी.जी. कॉलेज, दौसा, राजस्थान।

समकालीनता का निश्चयीकरण कैसे करें। किस समय विशेष से हम रचनाओं को समकालीनता स्वीकार करें। समकालीन का सरलीकृत तरीके से अपने अपने सुविधा के अनुसार इसकी समय सीमा को कम या अधिक के किया जाता है। आवश्यकता के अनुसार इसकी सीमा काफी विस्तार न सीमित कर दी जाती है। ''कोशगत अर्थो समकालीनता और समसामयिकता को अंग्रेजी के ''कन्टम्प्रोरिनिटी'' (Contermporanetty) अथवा ''को–ईवाल'' (Coeval) का समान वाची माना गया है जिसका अर्थ है ''उसी समय या कालखण्ड में होने वाली घटना या प्रवृत्ति या एक ही कालखण्ड में जी रहे व्यक्ति।'' यह अर्थ समकालीनता को निश्चित कालखण्ड में समेटता है।'' (स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली सं0 2003, पृ0–15–16)

समकालीनता अपने आप में एक खास प्रश्न है। अनेक विद्वानों ने इस पर अपने मत दिये हैं। डॉ0 नरेन्द्र मोहन कहते हैंः ''समकालीन का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना उनके मूल श्रोत तक पहुँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है। समकालीनता तात्कालिकता नहीं है।'' (समकालीन कहानी की पहचान. डॉ0 नरेन्द्र मोहन, भूमिका पृ0–2)

डॉ0 नगेन्द्र समकालीनता की पहचान आधुकिता से जोड़ते हुए करते हैं। इसमें वे युगवोध को भी भाामिल करते हैं। लेकिन समाकालीनता, समकालिकता और आधुनिकता बोध अलग अलग है। समकालीन होना आधुनिक हो जाना नहीं है और आधुनिक होना समकालीन होना नहीं। कोई रचनाकार जिन सम्बन्धों में आधुनिक होता उन्हीं सम्बन्धों में वह प्रासांगिक भी होता है। जैसे कबीर प्रासंगिक हो सकते हैं क्योंकि उन में आधुनिकता बोध है लेकिन वे समकालीन नहीं स्वीकार किये जायेंगे।

समकालीन हिन्दी कविता में स्त्री जीवन की अनेक छवियाँ सामने उभर कर आती है। अनेकसः संघर्ष करती स्त्री अपने अधिकार व समस्त प्रकार के बंधन से मुक्त होकर मनुष्य की तरीके से जीने की आकांक्षा के साथ सामने आती है। वह देह मुक्ति के साथ लिंग से भी मुक्ति की आशा रखती है। ''राजनीतिक या समाजिक समस्याओं को उठाने के स्थान परिवेश और समाज के अनेक छोटे छोटे संदर्भों को अपनी कविता का विषय बनाना चंद्रकला को अधिक प्रिय है। इन संदर्भों के माध्यम से ही वह किसी संदर्भ तक पहुँचना चाहती है। बाहरी दुनिया की अपेक्षा कवपित्री मुक्ति अन्तर में झांकना चाहती है और आंतरिक जगत की विविधता को उभारना चाहती है।'' (समकालीन कविता का सच, डॉ. गुरूचनण सिंह, पृ0 108)

व्याक्ति के अंतरंग व वहिरंग का एकाकर ही जीवन का वास्तविक साक्षात्कार है। स्त्री चिंतन इसी समानता के निमर्श को आगे बढ़ाता है। जहाँ किसी प्रकार के द्वैध या दुविधा का भाव नहीं रह जाता। मनुष्य केवल मनुष्य के रूप में देखा और स्वीकार किया जाता है। जहाँ सभी समाजिक व जागतिक तथा मानव सभ्यताओं द्वारा निर्मित बंधन समाप्त कर दिये जाते हैं। किसी प्रकार की सत्ता की कोई भी वर्चस की एक बूँद भी नहीं रह जाती।

समकालीन हिन्दी कविता में मानव का चित्रण विविध ढंग से हो रहा है। इस दौर की रचनाओं में स्त्री जीवन का स्वरूप काफी हद तक वर्तमान के भूमण्डलीकृत व्यवस्था के अनुरूप चित्रित हो रहा है। भूमण्डलीकरण ने भारत ही नहीं समूची दुनिया में बाजारवाद को जन्म दिया है। इसने पूरी दुनिया में उपभोक्तावाद को पैदा किया है। नवउदारवाद और पूँजी के मुक्त व्यवहार और व्यापार में महिलाओं का उपयोग पूरी तनमयता से किया जा रहा है। आज समाज का प्रत्येक हिस्सा भूमण्डलीकृत व्यवस्था से गहरे स्तर तक प्रभावित है।'' भूमण्डलीकरण जीवन के हर कोने में अस्तित्व के हर रूप का वस्तुकरण करता है।'' (बाजार के वीचन्बाजार के खिलाफ प्रभा खेतान, वागी प्र0 नई दिल्ली संख0 2004, पृ0 32)

यह जितना सही है कि स्त्री भारतीय समाज में जितना दबी रही है उतना ही उसके दवेपन को इस्तेमाल भी किया गया है। उसकी उनमुक्ता व मुक्ति के नाम पर जैसे जैसे देश में नारी आंदोलन चलते हैं, स्त्री जीवन के अनेक बंधनों को तोड़ने की बात उठती है। वैसे वैसे समूची समाजिक व पूंजीगत व्यवस्था बड़े ही सचेत ठंग से इस परिवर्तन को अपने पक्ष में करने के उदमत हो जाती है। प्रगतीवादी एवं स्त्रीवादी आंदोलनों ने

स्त्री विमर्श को एक नमा आभाम दिया। साठ सत्तर के दशक के बाद यह स्त्री आंदोलन एक नया और मुखर स्वरूप धारण करता है। इस में अब पहले जैसा भार्मीला व लचीलापन नहीं रहता। उदारीकरण के बाद, खासकर 90 के दशक के बाद से स्त्री विमर्श की सभी वंधी वधाई मान्यताएँ टूटती है और स्त्रियाँ अपने जीवन के विमर्श को बढ़ाती है।

स्त्री अनेक प्रकार से संघर्ष करती है अपने लिए बंद दरवाज़ों को खोलती है वह समाजिक संबन्धों को सुलझाने का प्रयास तो करती ही हैं वह व्यक्तिगत जीवन व पारिवारिक जीवन के उलझे पहलुओं से मुक्त होने का प्रयास करती हैं। इसमें स्त्री जीवन की अपनी एक अस्मिता भी उभर कर सामने आती है।

''धीरे धीरे मेरे कंधे से उतर रहा है मेरा घर
धीरे धीरे उतर रही है चमड़ी मेरे ये कपड़े
मेरे सामने घुटनों के बल बैठे
कह रहे हैं कि अब बहुत हुआ।''
(अबुद्वदुप अनामिका, राजकमल प्र0, नई दिल्ली पृ0 56)

अनामिका की यह कविता जितना अपना अर्थ देती है उससे कहीं अधिक कुछ महत्वपूर्ण अर्थों को ध्वानित करती है। स्त्री अब केवल एक घर की विषयवस्तु नहीं है। इसमें सबसे महत्व की बात यह दर्शायी गयी है कि स्त्रियाँ अब ''हाउस वाइफ'' के टैग से मुक्त होना चाहती हैं। इस कविता के अंत में कह भी बैठता है 'अब बहुत हुआ''। इसका तात्पर्य यही है कि अब तक बंधन व दासता जो वेमकसद तहज़ीबी लिबास ओढ़ाया गया था उसे अब उतार देने का समय आ गया है। उसमें एक खीझ भी है और गुस्सा भी। यह अभिव्यक्तियाँ मौलिक रूप से उसी जकड़वंदी के खिलाफ है जिसमें औरत को इन्सान नहीं माना गया। इस प्रकार की कविताएं मर्दवादी परिवेश व व्यवस्था का प्रतिकार करती है।

''एक गुमसुम गुस्सा उबल रहा है धीरे–धीरे
जैसे उबलते हैं मुट्ठी भर चावल
भारणार्थी शिविर के बाहर मिट्टी की हाडी में
लकड़ियों की आग पर धीरे धीरे लेकिन लगाता''
(खुरदुरी हथेलियाँ, अनामिका, राजकमल प्र0 नई दिल्ली पृ0 42)

स्त्री जीवन अपनी अस्मिता और स्वल्ववोध को लेकर काफ़ी सतर्क हैं। उसमें धीरे धीरे इस पितृसत्ता के शोषणकारी चरित्र की समझ बनी है। इस समझ के विकसित होने के साथ ही उसमें उस व्यवस्था के ख़िलाफ काफ़ी गुस्सा भी है। इस गुस्से को उसने पालना भी सीखा है और सभी प्रकार की कुव्यवस्थाओं से लड़ने का हुनर भी इजाद करने का प्रयास किया है।

''चली जाती हूँ उन घाटियों में भटकने
जहाँ कतई उम्मीद नहीं है उससे निकलने की मेरी कल्पना ने
जिसे चुना है जाती हूँ लौटने हर बार नये सिरे
से उन्हीं अक्षरों के बीच जिनसे मिलती जुलती हूँ मिलती हुलती है
जो कितनी उन निम्नों से फिर जिनके
अर्थ छिपे रहते है उजागर होकर भी''
(स्वप्न समय सविता सिंह, राधा कृष्ण प्रकाषन, नई दिल्ली, सं0 2013, पृ0 53)

यह स्त्री जीवन की स्वाप्निल सच्चाई है इस प्रकार की रचनाओं में कवयित्री ने स्त्री की स्वाभाविक आकांक्षा और यथार्थ के स्वरूप को पहचाना है और उसे अपनी रचना का उपजीव्य बनाया है। आदर्श और वास्तविक जीवन के अंतर को मिटाने का संघर्ष ही स्त्री विमर्श का केन्द्रीय बिन्दु है। मुक्ति के मार्ग को प्रसस्त करने की एक ललक है जो कि अत्पंत उत्कट है। कुछ इस प्रकार यह भावना व्यक्त हुई है।

''मैं औरत हूँ नहीं है मेरे पास दो चेहरे
दो मुँह और दो तरह का जीवन
मैं जो हूँ–हूँ जो नहीं हूँ नही हूँ
मुझे अफसोस नहीं कि मैं सीता सावित्री के साँचे मे फिट नहीं बैठती
बक इतना काफी है कि मैं मनुष्य हूँ।''
(जब मैं स्त्री हूँ, रंजना जयसवाल, नयी किताब, नई दिल्ली, सं0 2009, पृ0–32)

स्त्री विमर्श में कविता के माध्यम से ऐसी प्रतिरोधी भावना उन सभी पुरूषवादी संस्थाओं के खिलाफ़ विद्रोह है जो स्त्री समाज को दलता है। इस छल और प्रपच में जितने आदर्श और प्रतीक गढ़े गये हैं, उनका भी नकार इसमें दर्ज है। बड़े ही मजबूती के साथ में नकार स्वीकारोक्ति के साथ अभिवक्त किये गये हैं। प्रतिकार और तंजिपा लहजे में स्त्रियाँ अपने जीवन की निर्मम सच्चाई को कुछ इस प्रकार बयाँ करती हैं।

निष्कर्ष

आज अनेक प्रकार से हिन्दी कविता स्त्री विमर्श को समृद्व कर रही है। जल जंगल, जमीन आदि अनेक प्रश्नों को रेखांकित किया जा रहा है। देश को प्रभावित करने वाले सामूहिक मुद्दों को स्त्री विमर्श के माध्यम से उठाया जा रहा है समकालीन कविता जितना पितृसत्तात्मक समाज से लड़ रही है उतना वैश्वीकृत बाजारवादी जमाने से भी। यह लड़ाई दोहरी है। इसमें सत्ता–प्रतिष्ठानों से मुक्ति की गुहार भी है और अधिकार प्राप्ति का उद्घोष भी। हमारी सामाजिक व्यवस्था ने हमेषा स्त्री को घर की चारदीवारी में रहकर केवल दूसरों के लिए त्याग की मूर्ति बना दिया और उसको स्वयं के बारे में सोचने का कोई अवसर प्रदान नहीं किया। स्त्री ने जब–जब समाज में निजत्व के बारे में मंथन किया उस पर न जाने कितनी बंदिशें लगाकर पुरूष पथबाधा बनकर खडा हो गया। मूलभूत सच तो यह है पुरूष प्रधान समाज स्त्री की असाध्य कार्यक्षमता से भयभीत है। वो सोचता है कि स्त्री में अनोखी भाक्ति है यदि उसको समाज में स्वतंत्र कर दिया जाएगा तो वह अपनी काबिलियत के बल पर सबको अपने अधीन कर लेगी। इसी भय के कारण वह स्त्री को बंदिशों में रखकर स्वयं का साम्राज्य स्थापित करना चाहता है। पुरूष प्रधान समाज ने सोचा है कि यदि स्त्री अपने बारे में सोचने लगेगी तो हमारे लिए चुनोतियॉ खडी हो जाएगी। स्त्री पुरूष के प्रेम को भी भीख के रूप में स्वीकार नहीं करना चाहती। स्त्री को वस्तू नहीं है जिसे कहीं पर भी रख दिया जाए उसका भी अस्तित्व है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चुनी हुई कविताएं– कैलाश वाजपेयी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृष्ठ –4
2. नयी कविता की चिंतन भूमि–डॉ. ऊषा कुमारी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ –62
3. कविता के नए प्रतिमान–नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ –29
4. जब मैं स्त्री हूँ, रंजना जयसवाल, नयी किताब, नई दिल्ली, सं0 2009, पृ0–32
5. अपने जैसा जीवन–सविता सिंह, राधाकृष्ण प्र0, नई दिल्ली, सं0 2009, पृ0.32
6. स्वप्न समय सविता सिंह, राधा कृष्ण प्रकाषन, नई दिल्ली, सं0 2013, पृ0 53
7. खुरदुरी हथेलियाँ, अनामिका, राजकमल प्र0 नई दिल्ली पृ0 42
8. अबुद्वदुप अनामिका, राजकमल प्र0, नई दिल्ली पृ0 56
9. बाजार के वीचन्बाजार के खिलाफ प्रभा खेतान, वागी प्र0 नई दिल्ली सं0 2004, पृ0 32
10. समकालीन कविता का सच, डॉ0 गुरूचनण सिंह, पृ0 108
11. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ, रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाषन, नई दिल्ली सं0 2003, पृ0–15–16

❖◆❖